मेरी मंज़िल का निशाँ कौन है

राहें अनजानी
कदम खोजते दिशा
मन प्रश्न करे
दूर उजाला
किस ओर बुलाता है
दिल समझे क्या
खामोश क्षितिज
संकेत देता रहे
आस जगे
भटके पथिक
स्वयं को ही ढूंढे
उत्तर भीतर
सपनों की लौ
रात में भी जलती
हिम्मत बढ़े
चलते रहो तुम
मंज़िल खुद बोलेगी
सच उभरेगा
निशाँ वही है
जो दिल में बसता
रास्ता बने
खोज का अंत
अपने ही भीतर है
मंज़िल मिले

डॉ अशोक
पटना, बिहार

कैसी ज़मीं, कैसा आसमाँ

कैसी ज़मीं, कैसा आसमाँ,
दोनों पास होकर भी
एक-दूसरे के नहीं
आसमान झुकता हर शाम,
पर ज़मीन पर
उसकी परछाई भी
थमना नहीं जान पाई।
झरने अनवरत बहते,
अपने ही स्वर में डूबे हुए,
पर कभी
अपना पानी नहीं पीते
जैसे देने में ही
उनकी पूरी प्यास छिपी,
पेड़ छाया देते,
धूप से लड़ते हुए,
पर खुद
धूप से बचे नहीं
नदियाँ किनारों को छूती
साथ-साथ प्लावित ,
फिर भी
कभी रुकती नही,
मनुष्य
वह भी तो कुछ ऐसा ही,
दूसरों के लिए झुका,
अपने अन्दर
एक अधूरी चुप्पी लिए।
ज़िंदगी ठहरती नहीं,
किसी के रोने पर,
दरकने पर भी नही
वह तो बस
गतिमान रहती है
घड़ी की सुइयों की तरह,
बिना रुके, बिना थमे।
कभी हम छूट जाते ,
कभी लोग,
कभी सपने
पर समय
वापस आने का
वादा नहीं निभाता,
फिर भी
एक अजीब सी जिद जीवन मे
कि हर टूटन के बाद
कुछ नया उगता,
हर बिछड़न के बाद
कोई स्मृति
धीरे-धीरे रुकती सांस के साथ
इसी का नाम
जीवन।
जहाँ हम
खुद के लिए नहीं,
पर किसी अनकहे पल के
साथ चलते रहते
ठीक वैसे ही
जैसे झरने बहते
और आसमान
हर दिन
ज़मीन को
निहारता
बिना छुए,
बिना झुके।

संजीव ठाकुर, रायपुर छत्तीसगढ़, 9009 415 415,

अंतर

ऊँची ईमारत और
ऊँचे लोग को देखकर
समझना है बहुत खतरा।
लगता है ऊँचे लोगो की
ऊँची पसंद भी होगी
जो भी होगी वह अंतरा।
सहज स्वभाव हर किसी
का दिल में राज करता है
वरना जीवन भर भरता ।
सहजता जीवन की एक
मिसाल रास्ते कितनी भी
हो कठिन पर न
हारता।

नरेन्द्र नन्द, राधिका नगर
धमतरी, छत्तीसगढ़

दोस्ती – एक लंबी दास्तान

दोस्ती...
ये कोई लफ़्ज़ नहीं,
ये तो जैसे रूह का एक टुकड़ा है,
जो किसी और में जाकर भी
खुद को पूरा महसूस करता है।
ना इसकी कोई शुरुआत तय होती है,
ना कोई आख़िरी मंज़िल,
ये बस यूँ ही शुरू हो जाती है–
किसी बेंच पर साथ बैठते-बैठते,
किसी नोटबुक के पन्ने पलटते-पलटते,
या यूँ ही किसी छोटी सी बात पर
एक साथ हँसते-हँसते।
याद है वो दिन,
जब बिना वजह घंटों बातें होती थीं,
और वजह मिल भी जाए
तो भी ख़त्म नहीं होती थीं।
वो चाय की चुस्कियाँ,
वो बेमतलब की बहसें,
वो 'तू समझ नहीं रहा' वाली जिद,
और फिर हँसकर सब भूल जाना–
शायद यही तो दोस्ती का असली चेहरा था।
दोस्ती वो आईना है,
जिसमें हम खुद को सच्चा देखते हैं,
जहाँ ना कोई दिखावा होता है,
ना कोई बनावट,
बस एक सादगी होती है,
जो दिल से दिल तक जाती है।
जब दुनिया हमें समझ नहीं पाती,
तब एक दोस्त होता है
जो हमारी खामोशी भी पढ़ लेता है।
वो पूछता नहीं 'क्या हुआ? ',
बस कह देता है–
'चल, कहीं दूर चलते हैं... '
दोस्ती में हिसाब नहीं होता,
यहाँ देने-लेने का कोई तराजू नहीं,
यहाँ तो बस दिल होता है,
जो बिना सोचे सब कुछ दे देता है।
वक्त के साथ सब बदलता है,
रास्ते, शहर, लोग...
पर कुछ दोस्त ऐसे होते हैं,
जो बदलते नहीं–
वो बस और गहरे हो जाते हैं,
जैसे पुरानी किताब की खुशबू,
जो हर बार खोलने पर
और भी महकती है।
कभी-कभी ज़िंदगी हमें दूर कर देती है,
मीलों की दूरी आ जाती है,
बातें कम हो जाती हैं,
मुलाकातें अधूरी रह जाती हैं,
पर फिर भी...
जब सालों बाद बात होती है,
तो लगता है जैसे
बीच का वक्त कहीं खो गया हो।
दोस्ती वो रिश्ता है,
जो खामोशी में भी ज़िंदा रहता है,
जो नाराज़गी में भी प्यार ढूंढ लेता है,
जो दूरी में भी करीब रहता है।
कभी वो हमारे साथ रोता है,
तो कभी हमारी हँसी में शामिल होता है,
कभी हमें समझाता है,
तो कभी हमारी पागलपन में शामिल हो
जाता है।
और सच कहूँ तो...
दोस्ती ही वो रिश्ता है,
जो हमें सबसे ज़्यादा 'हम' बनाता है।
जब हम खुद को भूल जाते हैं,
तब एक दोस्त ही होता है
जो हमें याद दिलाता है–
'तू ऐसा नहीं है... '
ज़िंदगी की भीड़ में,
जहाँ हर कोई अपने में खोया है,
वहाँ अगर कोई हाथ पकड़कर कहे–
'मैं हूँ ना ',
तो समझ लेना...
वो दोस्त है।
दोस्ती कोई कहानी नहीं,
जो खत्म हो जाए,
ये तो एक एहसास है,
जो हर पल साथ चलता है–
कभी हँसी बनकर,
कभी आँसू बनकर,
कभी याद बनकर,
और कभी...
बस एक सुकून बनकर।
और जब ज़िंदगी की किताब का
आख़िरी पन्ना पलटा जाएगा,
तो शायद सबसे ज़्यादा जो याद आएगा,
वो यही होगा–
किसी का कंधा,
किसी की हँसी,
किसी की डाँट,
और किसी का वो एक वाक्य–
'तू है ना, बस यही काफी है... '

मुकेश कुमार बिस्सा, जैसलमेर

सिक्कों के शोर में

क्षमा करना,
मैं उस देहरी पर नहीं जाता
जहाँ दौलत के ऊँचे दरवाज़े हों,
जहाँ सिक्कों की खनक में
इंसानियत की आवाज़ खो जाए।
मुझे डर है कहीं ऐसा न हो
कि उनके पैसों का अहंकार
मेरी नज़रों में उन्हें
छोटा कर दे।

डॉ.आकिब जावेद,
बांदा, उत्तर प्रदेश 9506824464

आजकल जल्दी ही थक जाता हूँ मैं

आजकल जल्दी ही थक जाता हूँ मैं,
किससे कहूँ–क्या परेशानी है?
मन की व्यथा यह बहुत पुरानी है,
आँखों पर चश्मा और कंधों पर बोझ भारी है।
खुद से सब कर जाने का पुराना किस्सा है,
घर का 'राजा बेटा' और दुनिया के लिए
'अच्छा इंसान' अब मेरी पहचान का हिस्सा है।
मैं कितना भी खुद को ताकतवर समझूँ–
मैं भी इंसान हूँ।
पर खुद के ही दर्पण से मैं कहाँ अनजान हूँ?
दौड़ रहा हूँ तेज समय की धारा में,
आँसू छुपाता इस जीवन की दौड़ में।
'ना' बोलना तो जैसे कभी सीखा ही नहीं,
'हाँ' का ही सारा यह बोझिल किस्सा है।
अब नहीं होगा...
अब बस रुकने का मन करता है,
अपना कमरा, अपना बिस्तर–
बस यही आँखों के आगे रहता है।
मदद माँग लूँ क्या किसी से?
बस मन यही डरता है,
जैसे खुद की ही नज़रों में
खुद को ही अच्छा बनना है।
लगता है 'ना' कह दिया, तो सब बिखर जाएगा,
लोगों की तारीफों में से
मेरा किस्सा हट जाएगा।
बाँटने से दुख घटता है–
मन यह क्यों नहीं कहता है?
थक चुका हूँ मैं अब...
यह बात खुद से क्यों नहीं कहता हूँ?

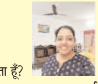

अनुपमा आर्य
आगरा

यह दोस्ती अपनी मुनासिब नहीं है

यह दोस्ती अपनी, मुनासिब नहीं है।
सोच तेरी सच में मुझसी नहीं है।।
नहीं मुझको यकीन तुम्हारी जुबां पे।
सोच तेरी मेरे प्रति अच्छी नहीं है।।
यह दोस्ती अपनी----------------।।
तुम सोचते हो कि मैं मजबूर बहुत हूँ।
अकेला हूँ मैं और कमजोर बहुत हूँ।।
तुम्हारे बिना कि मेरी हस्ती नहीं कुछ भी।
यह सोच तुम्हारी, सच में सही नहीं है।।
यह दोस्ती अपनी----------------।।
मदद मांगी तुमसे, तुम छुप गये जाकर।
इज्जत मांगी तुमसे, तुमने माना मुझे नौकर।।
तुम बहुत हंसे हो, मेरी बदनामी पर।
नजर तुम्हारी मुझ पर, अच्छी नहीं है।।
यह दोस्ती अपनी----------------।।
मुझसे नहीं है, शौक और ख्वाब तुम्हारे।
बहुत ही रंगीन है सच में, मिजाज तुम्हारे।।
राह और मन्जिल भी, अपनी जुदा है।
यह साथ अपना, सच में मुनासिब नहीं है।।
यह दोस्ती अपनी----------------।।

गुरुदीन वर्मा उर्फ़ जी.आज़ाद
तहसील एवं जिला- बारां(राजस्थान)

वेश जैसा कर्म चाहिए

आजकल चल पड़ा है
पैंट-शर्ट पहनने का एक नया चलन,

जैसे वस्त्र बदलते ही
बदल जाएगा जीवन।

वेश बदलने से पहले,
विचारों का रूप बदलो।

कपड़ों की चमक से पहले,
कर्तव्यों की धूप में जलो।

पहन लिया जो रूप नया,
तो जिम्मेदारियां भी साथ आएं।

आधुनिकता का अर्थ तभी है–
जब संस्कार भी संग निभाएं।

केवल दिखावे की दुनिया में,
खो जाना आसान बहुत है।

पर सच के आईने में देखो–
खुद से मिलना कठिन बहुत है।

अगर हाथ खाली हैं कर्मों से,
तो वस्त्रों की क्या पहचान।

आचरण ही असली गहना,
यही मनुष्य की सच्ची शान।

सभ्यता कपड़ों में नहीं,
विचारों में झलकनी चाहिए।

जो जैसा दिखता है बाहर,
वैसी ही उसकी कहानी चाहिए।

कहती है वीणा–
समय बदले, चलन बदलें,
इससे कोई हर्ज नहीं,

पर इंसान की पहचान में
कर्मों का कर्ज नहीं।

वेश के संग-संग हर पल
जिम्मेदारी का मर्म चाहिए,

इस बदलते दौर में बस
वेश जैसा कर्म चाहिए।

वीणा वैष्णव रागिनी, राजसमंद

तथागत तुम्हें आज आना पड़ेगा

तथागत तुम्हें आज आना पड़ेगा ।
लगी युद्ध की लौ बुझाना पड़ेगा ।।
धरा रक्त रंजित हुआ जा रहा है ।
सभी ओर देखो धुँआ छा रहा है ।।
घना कोहरा नभ हटाना पड़ेगा ।
तथागत तुम्हें आज आना पड़ेगा ।।
लिए अस्त्र हाथों खड़े द्वार देखो ।
रहे सज्ज सेना बड़े वार देखो ।।
समर का उन्हें फल बताना पड़ेगा ।
तथागत तुम्हें आज आना पड़ेगा ।।
नहीं युद्ध से कुछ मिलेगा जवानों।
हताशा जगत में दिखेगा जवानों।।
पुनः शांति संदेश लाना पड़ेगा ।
तथागत तुम्हें आज आना पड़ेगा ।।
भटक मार्ग मानव गया आज है जो ।
बना देख दानव नया काज है जो ।।
उन्हें फिर मनुजता सिखाना पड़ेगा ।
तथागत तुम्हें आज आना पड़ेगा ।।
महाकारुणिक पथ तुम्हारा रहेगा ।
दिशा शांति प्रज्ञा सहारा रहेगा ।।
भ्रमण विश्व का फिर लगाना पड़ेगा ।
तथागत तुम्हें आज आना पड़ेगा ।।
तथागत तुम्हें आज आना पड़ेगा ।
लगी युद्ध की लौ बुझाना पड़ेगा ।।

डिकेश दिवाकर
छत्तीसगढ़

सड़ा दिमाग

जब से घर में लड़की ने गड़बड़ी मचाई है,
तभी से बूढ़ऊ की बुद्धि पूरी हड़बड़ाई है।
अपना पैसा निकलवाने के फेर में,
कर्जदार के भाई को पकड़ लिया देर में,
बेटे को छोड़, पूत को जकड़ लिया,
अन्याय का एक नया ही रास्ता पकड़ लिया।
सबको पता है वो रोज सुबह आता है,
चाय की चुस्कियों संग तगादा सुनाता है,
हर सुबह कर्जदार को डराता-धमकाता है,
जिंदगी को उसका बोझिल बनाता है।
ले-देकर कर्जदार ने मूल चुका दिया,
पर ब्याज का नया फरमान सुना दिया,
अब वो घुट-घुट कर जीने लगा,
ग़म में डूबकर जहर सा पीने लगा।
तगादों ने उसे इतना परेशान कर दिया,
चिंता ने उसे अस्पताल पहुँचा दिया,
चार दिन की जद्दोजहद के बाद,
वो इस दुनिया से ही निकल गया।
बूढ़ऊ के चेहरे का रंग बदल गया,
पर उसका लालच फिर भी न पिघल गया,
अब उसने नया पैंतरा अपनाया है,
कर्जदार के बदले भाई को सताया है।
मगर वो भूल गया
किससे पाला पड़ा है,
अब सब जान गए–
दिमाग उसी का सड़ा है।

राजेन्द्र लाहिरी,
पामगढ़ (छ.ग.)

सुन्दर कविता बनती है

कवि,मन जो लिख देता है
वहीं तो कविता बन जाती है ।

दिल के भाव जो मन में आये
कविता वहीं तो लिख जाती है ।

सरल लेखनी शुद्ध भाव हो
शब्द जुड़े लाइन बन जाती है ।

एक एक लाइन के जुड़ने से
सुन्दर सी कविता बनती है ।

रस छंद अलंकार भले न हो
बिना श्रंगार भी बन जाती है ।

सुन्दर भावों से मिलकर ही
सुन्दर कविता लिख जाती है ।

दुल्हन की तरह कविता होती है
सादे कपड़ों में भी दुल्हन होती है

जेबर गहने भी भले न पहनें हो
बस शादी, दुल्हन से ही होती है ।

कोर्ट में लड़का लड़की जाकर
अपनी मर्जी से शादी करते हैं ।

प्रमाण पत्र मिल जाने पर ही
दुल्हा दुल्हन,पति पत्नी होते हैं ।

सिर से लेकर पैरों तक भी
दुल्हन को गहने पहनाते हैं ।

गरीब की बेटी गहने न पहनें
उसको भी दुल्हन ही कहते हैं ।

कविता भी दुल्हन की तरह
जैसी हो कविता कहलाती है ।

सादे शब्द भाव
कविता में हो
वो ही सुन्दर
कविता होती है ।

डा अनन्तराम
चौबे, जबलपुर

संस्कार सुसज्जित भूषित जीवन

सुख दुख अपनों का परखें जन मन
स्थिति और परिस्थिति में
आनंद मनाएं अंतरमन।
विश्वास आश की श्रद्धा हो
आशीष बने शिव सावन,
जैसा भी हो जितना भी हो
केवल हो मनभावन ।
रंजिशे मिटे, ना बंदिश हो
सुख का आभास ना दुख का हो,
सब अपने ना कोई पराया हो
बंटे ना धरती टुकड़ों में
हर कोई मां का प्यारा हो।
कश्ती चले चले जीवन
मजबूती से पतवार थमे,
परहित में पुरुषार्थ बने
उत्साहों में थम जाए गम।
नील गगन के नीचे
खगकुल का कलरव हो,
एकता सूत्र में बंधे हुए
किंचित मात्र न बिखरव हो।
भव्य भारती आंचल में
भावपूर्ण भारत हो ,
संयम सदाचार निष्ठा में
निश्चल जन मन रत हो।।

आशीष बाजपेई ' राम
बिल्हौर कानपुर,
मोः 9140065966

सारा संदल गर्द

जोश सारा सर्द कैसे हो गया
सुर्ख लहजा ज़र्द कैसे हो गया
सोचना तुझको है तू ही सोचना।
तू दवा था दर्द कैसे हो गया
उड़ गई सारी महक इक रात में।
सारा संदल गर्द कैसे हो गया
दर्द देना तो तिरी आदत में है।
तू मिरा हमदर्द कैसे हो गया
पूछती है नित नई गुड़िया सवाल।
ये शहर नामर्द कैसे हो गया
कल यही मौसम सुहाता था हमें।
आज ये बेदर्द कैसे हो गया
जिसमें कोई गुण नहीं इंसान का।
ये बता दो फ़र्द कैसे हो गया??

प्रणय प्रभात
श्योपुर (मप्र)

खिड़की के पास

मैं बत्तीस की हूँ,
और यह ट्रेन
आज मुझसे कुछ नहीं पूछती।
बस चलती है।

जैसे जानती हो
कि सवालों से मैं
थोड़ी थक चुकी हूँ।

खिड़की के बाहर
पेड़ पीछे छूटते जाते हैं,
और भीतर
कुछ पुराने डर
धीरे-धीरे हल्के हो जाते हैं।

मेरे पास कोई बड़ी मंज़िल नहीं,
सिर्फ़ एक टिकट है
और यह भरोसा
कि जहाँ उतरूँगी
वहाँ मैं खुद को
संभाल लूँगी।

ट्रेन की आवाज़
लोरी जैसी है–
कहती है,
÷सब ठीक है,
जल्दी कहीं नहीं है।÷

मैं अपनी परछाईं
काँच में देखती हूँ,
वह मुझसे कहती है
कि अब मैं
टूटी हुई नहीं,
बस बदलती हुई हूँ।

किसी स्टेशन पर
अगर उतरना हुआ,
तो डर के साथ नहीं,
उम्मीद के साथ उतरूँगी–
क्योंकि
मैंने चलना
सीख लिया है।

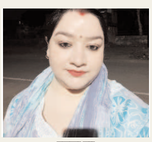

रचना झा

कर्म का कुल

डॉ रामानुज
पाठक सतना
(म.प्र.)

जाति महान होती तो इतिहास कुछ और होता,
नामों का नहीं, केवल उपनामों का शोर होता।
यादव कंस की क्रूरता को गाता,
ब्राह्मण रावण के अभिमान को पूजता,
राजपूत जयचन्द्र के विश्वासघात को सजाता।।
पर सच का दीपक यह स्वीकार नहीं करता।
क्योंकि कुल से नहीं, कर्म से उजियारा होता है,
मानव का मूल्य उसके आचरण से निखरता है।
वंश की दीवारें ऊँची हों चाहे जितनी,
चरित्र की नींव बिना सब ढह जाता है।।
कंस था अधर्म का प्रतीक,
रावण ज्ञानवान होकर भी अहंकार में अंधा,
जयचन्द्र की कथा में विश्वास टूटा,
इनके कर्मों ने ही इन्हें पहचाना,
न कि जन्म ने इन्हें महान बनाया।
जो सत्य के पथ पर चलता है, वही पूज्य होता है,
जो न्याय के लिए खड़ा हो, वही श्रेष्ठ होता है।।
जाति की सीमाएँ वहाँ मिट जाती हैं,
जहाँ मानवता अपना स्वर पाती है।
इतिहास गवाह है,
राम को उनके कर्मों ने मर्यादा दी,
कृष्ण को उनके कर्मों ने योगेश्वर बनाया,
न कि केवल उनका जन्म उन्हें महान कर पाया।
तो फिर क्यों हम बंधें इन खोखली परिभाषाओं में,
क्यों खो जाएँ झूठी अभिलाषाओं में?
मनुष्य वही है जो मनुष्यता निभाए,
सत्य, करुणा और धर्म को अपनाए।
जाति नहीं, कर्म ही पहचान बने
यही सच्चा संदेश युगों से गूँजता आए।

मछली, जल और जाल

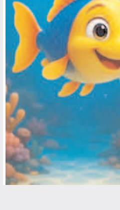

मछली का जीवन जल है,
जल ही उसका संसार,
लहरों की गोद में पलती,
वहीं उसका हर विस्तार।

नीले गहरे सागर में,
या शांत नदी की धार,
वह तैरती निर्भय होकर,
जैसे कोई स्वप्न अपार।

जल की बांहों में झूले,
उसकी हर सांस बसी,
उसे लगता ये साथ मेरा
कभी न होगा ख़त्म अभी।

धूप छने जब जल के भीतर,
सोने-सी किरणें आएं,
मछली अपने छोटे मन में
सपनों के दीप जलाए।

वह समझे यही सत्य है,
यही सदा का साथी,
जल से बढ़कर कौन यहां है,
कौन है उससे मातृ-छाती?

पर जीवन के इस मृगतृष्णा में
छुपा हुआ एक सत्य कठोर,
जो दिखता है अपना-अपना,
वही छोड़ता अंत में तोड़।

एक दिन लहरें कुछ बदलीं,
जल में हलचल छा गई,
मछली ने सोचा खेल है ये,
कोई नई लहर आ गई।

पर वो तो जाल था फैला,
किसी लोभी की चाह में,
धीरे-धीरे घिरती मछली
आ फँसी उसकी बांह में।

जल वहीं था, पास ही बहता,
पर अब कुछ कर न सका,
जिसने जीवन भर संभाला,
वो भी साथ न दे सका।

मछली छटपटाई बहुत,
लहरों को पुकारा बारबार,
हे मेरे जीवन के साथी,
अब तो कर लो मेरा उद्धार।

पर जल मौन था, शांत खड़ा,
जैसे कोई सत्य कठोर,
कह रहा हो मैं साधन हूं,
साथी नहीं सदा के लिए और।

मछली ने तब जाना आखिर,
क्या है जीवन का सार,
जिसे अपना समझा सदा,
वो भी नहीं सच्चा आधार।

जाल में फंसी वो देह
धीरे-धीरे शिथिल हुई,
आंखों में एक प्रश्न लिए
वह अंतिम सीमा तक गई।

क्यों भरोसा किया मैंने
उस पर जो न था मेरा?
मन ही मन वह पूछ रही थी
जीवन का अंतिम फेरा।

तब कहीं भीतर से आवाज आई,
मौन में छिपा हुआ उपदेश
संसार का हर रिश्ता क्षणिक है,
सिर्फ आत्मा ही है शेष।

जल, जाल और मछली
तीनों की यह कथा पुरानी,
जीवन का गहरा दर्शन है,
जिसमें छुपी सच्चाई ज्ञानी।

जो दिखता है सदा अपना,
वो भी एक दिन छूटेगा,
और जिस पर तेरा अभिमान है,
वो भी तुझसे रूठेगा।

इसलिए हे मनुष्य समझ ले,
मत कर इतना अभिमान,
संस्कार, सत्य और करुणा ही
हैं तेरे सच्चे पहचान।

मछली की यह मौन कहानी
हर दिल को ये कहती है
जल में रहकर भी जान ले,
सच्ची शरण भीतर रहती है।

वीरेंद्र बहादुर सिंह, जेड-436ए,
सेक्टर-12, नोएडा-मो-
8368681336